माण्डूक्योपनिषदि
विशिष्टाद्वैतपरकम्
श्रीराघवकृपाभाष्यम्
(संस्कृत-हिन्दी भाष्य सहितम्)
भाष्यकाराः – जगद्गुरुरामानन्दाचार्याः
स्वामिरामभद्राचार्यमहाराजाः चित्रकूटीयाः

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

।। श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।।

माण्डूक्योपनिषदि

(विशिष्टाद्वैतपरकम्)

श्रीराघवकृपाभाष्यम्

(संस्कृत-हिन्दी भाष्य सहितम्)

भाष्यकाराः-

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्याः

स्वामिरामभद्राचार्यजीमहाराजाः

चित्रकूटीयाः

प्रकाशक :

श्रीतुलसीपीठसेवान्यासः

तुलसीपीठः, आमोदवनम्

श्रीचित्रकूटधाम, जनपदं-सतना (म० प्र०)

।। श्रीराघवो विजयतेतराम् ।।

प्रकाशकीयम्

नीलनीरदसंकाशकान्तये श्रितशान्तये ।
रामाय पूर्णकामाय जानकीजानये नमः ।।

साम्प्रतिकबुद्धिजीविवर्गे पण्डितसमाजे च श्रीवैष्णवसत्समाजे को नाम नाभिनन्दति ? पदवाक्यप्रमाणपारावारीणकवितार्किकचूडामणिसारस्वत-सार्वभौमपण्डितप्रकाण्डपरमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीवैष्णवकुलतिलकत्रिदण्डीश्वर-श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यवाचस्पतिमहामहनीयस्वामिरामभद्राचार्य-महाराजराजिष्णुप्रतिभाधनम् । आचार्यचरणैः श्रीसम्प्रदायश्रीरामानन्दीय-श्रीवैष्णवानुमोदितविशिष्टाद्वैतवादाम्नायमनुसृत्य ईशावास्यादि बृहदारण्यकान्तानामेका-दशोपनिषदां श्रीराघवकृपाभाष्यं प्रणीय भारतीयसंस्कृतवाङ्मयसनातनधर्मावलम्बिनां कियान् महान् उपकारो व्यधायीतिं तु निर्णेष्यतीतिहासः सोल्लासः । अस्य ग्रन्थरत्नस्य प्रकाशनदायित्वं श्रीतुलसीपीठसेवान्यासाय प्रदाय ऋणिनः कृता वयं श्रीमज्जगद्गुरुभिः वयं तेषां सततमाघमर्ण्यभाजः । अहं धन्यवादं दित्सामि साधुवादं च, वाराणसीस्थाय राघव ऑफसेट मुद्रणालयाध्यक्षाय चन्दनेशाय श्रीविपिनशंकरपाण्ड्यामहाभागाय, येन महता परिश्रमेण निष्ठया च गुरुगौरवेण जनताजनार्दनकरकमलं समुपस्थापितं ग्रन्थरत्नमेतत् । अहमाभारं बिभर्मि सकल-शास्त्रनिष्णातानां पण्डितप्रवराणां मुद्रणदोषनिराकरणचञ्चुनां जगद्गुरुवात्सल्यभाजनानां परमकुशलकर्मणां पं० प्रवर श्रीशिवरामशर्मणाम् पं० कृपासिन्धुशर्मणाम् च ।

अन्ततः सांग्रहं निवेदयामि सर्वान् विद्वत्प्रवरान्, यत्—

ग्रन्थरत्नमिदं मत्वा सीताभर्तुरनुग्रहम् ।
निराग्रहाः समर्चन्तु रामभद्रार्यभारतीम् ।।

इति निवेदयते

राघवीया

कु० गीता देवी

प्रबन्धन्यासी, श्रीतुलसीपीठसेवान्यासस्य

श्रीराघवाष्टकम्

निशल्या कौसल्या सुखसुरलतातान्तिहृतये ।
यशोवारां राशेरुदयमभिकाङ्क्षन्निव शशी ।
समञ्चन् भूभागं प्रथयितुमरागं पदरतिम् ।
तमालश्यामो मे मनसि शिशुरामो विजयते ।।१।।

क्वचित् क्रीडन् व्रीडाविनतविहगैर्वृन्दविरुदो ।
विराजन् राजीवैरिव परिवृतस्तिग्मकिरणः ।
रजोवृन्दं वृन्दाविमलदलमालामलमलम् ।
स्वलङ्कुर्वन् बालः स इह रघुचन्द्रो विजयते ।।२।।

क्वचिन् माद्यन् माद्यन् मधुनवमिलिन्दार्यचरणा- ।
म्बुजद्वन्द्वो द्वन्द्वापनयविधिवैदग्ध्यविदितः ।
समाकुञ्चत् केशैरिव शिशुघनैः संवृतमिव ।
विधुं वक्त्रं विभ्रन् नरपतितनूजो विजयते ।।३।।

क्वचित् खेलन् खेलन् मृदुमरुदमन्दाञ्चलचल- ।
च्छिरः पुष्पैः पुञ्जैर्विबुधललनानामभिचितः ।
चिदान्दो नन्दन् नवनलिननेत्रो मृदुहसन् ।
लसन् धूलीपुञ्जैर्जगति शिशुरेको विजयते ।।४।।

क्वचिन् मातुः क्रोडे चिकुरनिकरैरंजितमुखः ।
सुखासीनो मीनोपमदृशिलसत्कज्जलकलः ।
कलातीतो मन्दस्मितविजितराकापतिरुचिः ।
पिबन् स्तन्यं रामो जगति शिशुहंसो विजयते ।।५।।

क्वचिद् बालो लालालसितललिताम्भोजवदनो ।
वहन् वासः पीतं विशदनवनीतौदनकणान् ।

विलुण्ठन् भूभागे रजसि विरजा सम्भृत इव ।
तृषा ताम्यत्कामो भवभयविरामो विजयते ।।६।।

क्वचिद् राज्ञो हर्षं प्रगुणयितुकामः कलगिरा ।
निसिञ्चन् पीयूषं श्रवणपुटके सम्मतसताम् ।
विरिंगन् पणिभ्यां वनरुहपदाभ्यां कलदृशा ।
निरत्यन् नैराश्यं नवशशिकरास्यो विजयते ।।७।।

क्वचिन् नृत्यन् छायाच्छपितभवभीतिर्भवभवो ।
दधानोऽलंकारं विगलितविकारं शिशुवरः ।
पुराराते: पूज्यः पुरुषतिलकः कन्दकमनः ।
अयोध्यासौभाग्यं गुणितमिहरामो विजयते ।।८।।

जयत्यसौ नीलघनावदातो ।
विभा विभातो जनपारिजातः ।
शोभा समुद्रो नरलोकचन्द्रः ।
श्रीरामचन्द्रो रघुचारुचन्द्रः ।।९।।

ईशावास्यसमारब्धाः बृहदारण्यकान्तिमाः ।
ऐकादशोपनिषदो विशदाः श्रुतिसम्मताः ।।१०।।

श्रीराघवकृपाभाष्यनाम्ना भक्तिसुगन्धिना ।
पुण्यपुष्पोत्करेणेड्याः मया भक्त्या प्रपूजिताः ।।११।।

क्वचित्क्वचित् पदच्छेदः क्वचिदन्वययोजना ।
क्वचिच्छास्त्रार्थपद्धत्या पदार्थाः विशदीकृताः ।।१२।।

खण्डनं परपक्षाणां विशिष्टाद्वैतमण्डनम् ।
चन्दनं वैष्णवसतां श्रीरामानन्दनन्दनम् ।।१३।।

श्रीराघवकृपाभाष्यं भूषितं सुरभाषया ।
भाषितं भव्यया भक्त्या वेदतात्पर्यभूषया ।।१४।।

प्रमाणानि पुराणानां स्मृतीनामागमस्य च।
तथा श्रीमानसस्यापि दर्शितानि स्वपुष्टये ।।१५।।

प्रत्यक्षमनुमानं च शाब्दञ्चेति यथास्थलम्।
प्रमाणत्रितायं ह्यत्र तत्वत्रयविनिर्णयम् ।।१६।।

विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तदर्पणं श्रुतितर्पणम्।
अर्पणं रामभद्रस्य रामभद्रसमर्पणम् ।।१७।।

यदि स्युः त्रुटयः काश्चित्ताः ममैवाल्पमेधसः।
यदत्र किञ्चिद्वैशिष्ट्यं तच्छ्रीरामकृपाफलम् ।।१८।।

रुद्रसंख्योपनिषदां मया भक्त्या प्रभाषितम्।
श्रीराघवकृपाभाष्यं शीलयन्तु विमत्सराः ।।१९।।

इति मंगलमाशास्ते
श्रीवैष्णवविद्वत्प्रीतिवशंवदो राघवीयो जगद्गुरु रामानन्दाचार्यो स्वमिरामभद्राचार्यः
अधिचित्रकूटम्।

•

।। श्रीराघवो विजयतेतराम् ।।

उपोद्घात

यत् कृपाप्लवमासाद्य मण्डूकप्लुतितो जनाः ।
प्लवन्ते भववारीशं तं भजे राघवं शिशुम् ।।

यह उपनिषद् सबसे छोटा है परन्तु सिद्धान्त की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं गम्भीर है। इसमें प्रणव के चार मात्राओं के विभाग क्रम से जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीयावस्थाओं का तथा विश्व, वैश्वानर, सर्वज्ञ एवं परमेश्वर इन चार विभुओं का अंश की शैली से व्याख्यान किया गया है और सिद्धान्त में अन्य विभुओं के निरोध के माध्यम से तुरीय तत्वों को ही ध्येय और ज्ञेय के रूप में व्यवस्थापित किया गया है। इस उपनिषद् पर प्रायः प्रत्येक सम्प्रदाय के आचार्य अपनी-अपनी धारणा के अनुसार अपने सिद्धान्तों को उपस्थापित करने का प्रयास करते रहे हैं, यहाँ तक कि माण्डुक्य उपनिषद् के ही आलोक में आद्य शंकराचार्य के दादा गुरु श्रीगौड पादाचार्य ने माण्डुक्य कारिका लिखकर माण्डुक्य उपनिषद् को ही अद्वैतवाद सिद्धान्त की पृष्ठभूमि भी मान लिया है और जी-तोड़कर यह सिद्ध करने का आग्रह भी किया है कि सगुण ब्रह्म नम्बर दो का है और निर्गुण ब्रह्म ही शुद्ध है। आप सभी श्रीवैष्णवों के स्नेह तथा जगद्गुरु श्रीमदाद्य रामानन्दाचार्यजी के आशीर्वाद एवं तुलसी हर्षवर्धन गोस्वामी तुलसीदासजी के प्रसाद से मैंने इस उपनिषद् पर श्रीराघवकृपाभाष्य लिखकर युक्ति-युक्त तर्कों में विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार ही सर्वतो भावेन नवीनतम विवृत्ति प्रस्तुत की है। मैं पूर्णरूप से आश्वस्त हूँ कि मेरे इस भगवदीय प्रतिभा रूप तुलसीमंजरी से करोड़ों सनातन धर्मावलम्बी भाई-बहन, अपने मन और मस्तिष्क को श्रीराम प्रेम से धन्य-धन्य बनायेंगे।

।। इति मंगलमाशास्ते
तुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य चित्रकूट ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

●

वाचस्पति, श्री तुलसी पीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज
तुलसीपीठ, आमोदवन, चित्रकूट, जि. सतना (म.प्र.)

पदवाक्यप्रमाणपारावारीण, विद्यावारिधि, वाचस्पति परमहंस परिव्राजिकाचार्य, आशुकवि यतिवर्य प्रसथानत्रयी भाष्यकार धर्मचक्रवर्ती अनन्तश्री समलंकृत

श्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

पूज्यपाद

श्री श्री स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज

का

संक्षिप्त जीवन वृत्त

आविर्भाव

आपका अविर्भाव १४ जनवरी १९५० तदनुसार मकर संक्राति की परम पावन सान्ध्य बेला में वसिष्ठ गोत्रीय उच्च धार्मिक सरयूपारीण ब्राह्मण मिश्र वंश में उत्तर-प्रदेश के जौनपुर जनपद के पवित्र ग्राम शाडीखुर्द की पावन धरती पर हुआ। सर्वत्र आत्मदर्शन करने वाले हरिभक्त, या मानवता की सेवा करने वाले दानवीर, या अपनी मातृभूमि की रक्षा में प्राण बलिदान करने वाले शूर-वीर योद्धा, देशभक्त, को जन्म का सौभाग्य तो प्रभुकृपा से किसी भी माँ को मिल जाता है। परन्तु भक्त, दाता और निर्भीक तीनों गुणों की संपदा से युक्त बालक को जन्म देने का परम श्रेय अति विशिष्ठ भगवत् कृपा से किसी विरली माँ को ही प्राप्त होता है। अति सुन्दर एवं दिव्य बालस्वरूप आचार्य-चरण को जन्म देने का परम सौभाग्य धर्मशीला माता श्रीमती शची देवी और पिताश्री का गौरव पं० श्रीराजदेव मिश्रजी को प्राप्त हुआ।

आपने शैशव अवस्था में ही अपने रूप, लावण्य एवं मार्धुय से सभी परिवार एवं परिजनों को मोहित कर दिया। आप की बाल क्रीड़ाएँ अद्भुत थी। आपके श्वेतकमल समान सुन्दर मुख मण्डल पर बिखरी मधुर मुस्कान, हर देखने वाले को सौम्यता का प्रसाद बाँटती थी। आपका विस्तृत एवं तेजस्वी ललाट, आपके अपार शस्त्रीय ज्ञानी तथा त्रिकालदर्शी होने का पूर्व संकेत देता था। आपका प्रथम दर्शन मन को शीतलता प्रदान करता था। आपके कमल समान नयन उन्मुक्त हास्यपूर्ण मधुर चितवन चंचल बाल क्रीड़ाओं की चर्चा शीघ्र ही किसी महापुरुष के प्राकट्य की शुभ सूचना की भान्ति दूर-दूर तक फैल गई, और यह धारणा बन गई कि

यह बालक असाधारण है। 'होनहार विरवान के होत चीकने पात' की कहावत को आपने चरितार्थ किया।

भगवत् इच्छा

अपने प्रिय भक्त को सांसारिक प्रपञ्चों से दूर रखने के लिए विधाता ने आचार्य वर के लिए कोई और ही रचना कर रखी थी। जन्म के दो महीने बाद ही नवजात शिशु की कोमल आँखों को रोहुआ रोग रूपी राहू ने तिरोहित कर दिया। आचार्य प्रवर के चर्मनेत्र बन्द हो गए। यह हृदय विदारक दुर्घटना प्रियजनों को अभिशाप लगी, परन्तु नवजात बालक के लिए यह वरदान सिद्ध हुई। अब तो इस नन्हे शिशु के मन-दर्पण पर परमात्मा के अतिरिक्त जगत् के किसी भी अन्य प्रपञ्च के प्रतिबिम्बित होने का कोई अवसर ही नहीं था। आपको दिव्य प्रज्ञा-चक्षु प्राप्त हो गए। आचार्य प्रवर ने भगवत् प्रदत्त अपनी इस अन्तर्मुखता का भरपूर उचित उपयोग किया। अब तो दिन-रात परमात्मा ही आपके चिन्तन, मनन और ध्यान का विषय बन गए।

आरम्भिक शिक्षा

अन्तर्मुखता के परिणामस्वरूप आपमें दिव्य मेधाशक्ति और अद्भुत स्मृति का उदय हुआ, जिसके फलस्वरूप कठिन से कठिन श्लोक, कवित्त, छन्द, सवैया आदि आपको एक बार सुनकर सहज कण्ठस्थ हो जाते थे। मात्र पांच वर्ष की आयु में आचार्यश्री ने सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता तथा मात्र आठ वर्ष की शैशव अवस्था में पूज्य पितामह श्रीयुत् सूर्यबली मिश्र जी के प्रयासों से गोस्वामी तुलसीदास जी रचित सम्पूर्ण रामचरितमानस क्रमबद्ध पंक्ति, संख्या सहित कण्ठस्थ कर ली थी। आपके पूज्य पितामह आपको खेत की मेड़ पर बिठाकर आपको एक-एक बार में श्रीमानस के पचास पचास दोहों की आवृत्ति करा देते थे। हे महामनीषी, आप उन सम्पूर्ण पचास दोहों को उसी प्रकार पंक्ति क्रम संख्या सहित कण्ठस्थ कर लेते थे। अब आप अधिकृत रूप से श्रीरामचरितमानससरोवर के राजहंस बन कर श्रीसीता-राम के नाम, रूप, गुण, लीला, धाम और ध्यान में तन्मय हो गए।

उपनयन एवं दीक्षा

आपका पूर्वाश्रम का नाम 'गिरिधर-मिश्र' था। इसलिए गिरिधर जैसा साहस, भावुकता, क्रान्तिकारी स्वभाव, रसिकता एवं भविष्य निश्चय की

दृढ़ता तथा निःसर्ग सिद्ध काव्य प्रतिभा इनके स्वभाविक गुण बन गये। बचपन में ही बालक गिरिधर लाल ने छोटी-छोटी कविताएँ करनी प्रारम्भ कर दी थीं। २४ जून १९६१ को निर्जला एकादशी के दिन 'अष्टवर्ष ब्राह्माणमुपनयीत' इस श्रुति-वचन के अनुसार आचार्यश्री का वैदिक परम्परापूर्वक उपनयन संस्कार सम्पन्न किया गया तथा उसी दिन गायत्री दीक्षा के साथ ही तत्कालीन मूर्धन्य विद्वान् सकलशास्त्र-मर्मज्ञ पं० श्रीईश्वरदास जी महाराज जो अवध-जानकीघाट के प्रवर्तक श्री श्री १०८ श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज के परम कृपापात्र थे, इन्हें राम मन्त्र की दीक्षा भी दे दी।

उच्च अध्ययन

आपमें श्रीरामचरितमानस एवं गीताजी के कण्ठस्थीकरण के पश्चात् संस्कृत में उच्च अध्ययन की तीव्र लालसा जागृत हुई और स्थानीय आदर्श श्री गौरीशंकर संस्कृत महाविद्यालय में पाँच वर्ष पर्यन्त पाणिनीय व्याकरण की शिक्षा सम्पन्न करके आप विशेष अध्ययन हेतु वाराणसी आ गये। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की १९७३ शास्त्री परीक्षा में विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर एक स्वर्ण पदक प्राप्त किया एवं १९७६ की आचार्य की परीक्षा में समस्त विश्वविद्यालय में छात्रों में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर पाँच स्वर्ण पदक तथा एक रजत पदक प्राप्त किया। वाक्पटुता एवं शास्त्रीय प्रतिभा के धनी होने के कारण आचार्यश्री ने अखिल भारतीय संस्कृत अधिवेशन में सांख्य, न्याय, व्याकरण, श्लोकान्त्याक्षरी तथा समस्यापूर्ति में पाँच पुरस्कार प्राप्त किये, एवं उत्तर प्रदेश को १९७४ की 'चलवैजयन्ती' प्रथम पुरस्कार दिलवाया। १९७५ में अखिल भारतीय संस्कृत वाद-विवाद प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त कर तत्कालीन राज्यपाल डॉ० एम० चेन्ना रेड्डी से कुलाधिपति 'स्वर्ण पदक' प्राप्त किया। **इसी प्रकार आचार्यचरणों ने शास्त्रार्थों एवं भिन्न-भिन्न शैक्षणिक प्रतियोगिताओं में अनेक शील्ड, कप एवं महत्वपूर्ण शैक्षणिक पुरस्कार प्राप्त किये।** १९७६ वाराणसी साधुबेला संस्कृत महाविद्यालय में समायोजित शास्त्रार्थ आचार्यचरण प्रतिभा का एक रोमांचक परीक्षण सिद्ध हुआ। इसमें आचार्य अन्तिम वर्ष के छात्र, प्रत्युत्पन्न मूर्ति, शास्त्रार्थ-कुशल, श्री गिरिधर मिश्र ने 'अधातु परिष्कार' पर पचास विद्यार्थियों एवं अध्यापकों को अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञा एवं शास्त्रीय युक्तियों से अभिभूत करके निरुत्तर करते हुए सिंहगर्जनपूर्वक तत्कालीन विद्वान् मूर्धन्यों को परास्त किया था। पूज्य आचार्यश्री ने सं०वि०वि० के व्याकरण विभागाध्यक्ष

पं० श्री रामप्रसाद त्रिपाठी जी से भाष्यान्त व्याकरण की गहनतम शिक्षा प्राप्त की एवं उन्हीं की सन्निद्धि में बैठकर न्याय, वेदान्त, सांख्य आदि शास्त्रों में भी प्रतिभा ज्ञान प्राप्त कर लिया एवं 'अध्यात्मरामायणे अपणिनीयप्रयोगाणां विमर्शः' विषय पर अनुसन्धान करके १९८१ में विद्यावारीधि (Ph.D) की उपाधि प्राप्त की। **अनन्तर ''अष्टाध्याय्याः प्रतिसूत्रं शाब्दबोध समीक्षा'' इस विषय पर दो हजार पृष्ठों का दिव्य शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करके आचार्य चरणों ने शैक्षणिक जगत् की सर्वोत्कृष्ट अलंकरण उपाधि वाचस्पति'' (Dlit) प्राप्त की।**

विरक्त दीक्षा

मानस की माधुरी एवं भागवतादि सद्ग्रन्थों के अनुशीलन ने आचार्य-चरण को पूर्व से ही श्री सीतारामचरणानुरागी बना ही दिया था। अब १९ नवम्बर १९८३ की कार्तिक पूर्णिमा के परम-पावन दिवस को श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में विरक्त दीक्षा लेकर आचार्यश्री ने एक और स्वर्ण सौरभ-योग उपस्थित कर दिया। पूर्वाश्रम के डॉ० गिरिधर मिश्र अब श्रीरामभद्रदास नाम से समलंकृत हो गये।

जगद्गुरु उपाधि

आपने १९८७ में श्रीचित्रकूट धाम में श्रीतुलसीपीठ की स्थापना की। उसी समय वहाँ के सभी सन्त-महान्तों के द्वारा आपको श्रीतुलसीपीठाधीश्वर पद पर प्रतिष्ठित किया और ज्येष्ठ शुक्ल गंगा दशहरा के परम-पावन दिन वि० सम्वत् २०४५ तदनुसार २४ जून १९८८ को वाराणसी में आचार्यश्री का काशी विद्वत् परिषद् एवं अन्य सन्तमहान्त विद्वानों द्वारा चित्रकूट श्रीतुलसीपीठ के जगद्गुरु रामानन्दाचार्य पर पर विधिवत अभिषेक किया गया एवं ३ फरवरी १९८९ को प्रयाग महाकुम्भ पर्व पर समागत सभी श्री रामानन्द सम्प्रदाय के तीनों अखाड़ों के श्रीमहन्तों चतुःसम्प्रदाय एवं सभी खालसों तथा सन्तों द्वारा चित्रकूट सर्वाम्नाय श्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्य महाराज को सर्वसम्मति से समर्थनपूर्वक अभिनन्दित किया।

विलक्षणता

आपके व्यक्तित्व में अद्भुत विलक्षणता है। जिनमें कुछ उल्लेखनीय हैं कोई भी विषय आपको एक ही बार सुनकर कण्ठस्थ हो जाता है और वह कभी विस्मृत नहीं होता। इसी विशेषता के परिणामस्वरूप जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

जी ने समस्त तुलसी साहित्य अर्थात् तुलसीदास जी के बारहों ग्रन्थ, सम्पूर्ण रामचरितमानस, द्वादश उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, नारद-भक्तिसूत्र, भागवद्गीता, शाण्डिल्य सूत्र, बाल्मीकीयरामायण व समस्त आर्य ग्रन्थों के सभी उपयोगी प्रमुख अंश हस्तामलकवत् कण्ठस्थ कर लिये। आचार्यश्री हिन्दी एवं संस्कृत के आशुकवि होने के कारण समर्थ रचनाएँ भी करते हैं। वसिष्ठ गोत्र में जन्म लेने के कारण आचार्यवर्य श्रीराघवेन्द्र की वात्सल्य भाव से उपासना करते हैं। आज भी उनकी सेवा में शिशु रूप में श्री राघव अपने समस्त परिकर खिलौने के साथ विराजमान रहते हैं। आचार्यवर्य की मौलिक विशेषता यह है कि इतने बड़े पद को अलंकृत करते हुए भी आपका स्वभाव निरन्तर निरहंकार, सरल तथा मधुर है। विनय, करुणा, श्रीराम-प्रेम, सच्चरित्रता आदि अलौकिक गुण उनके सन्तत्त्व को ख्यापित करते हैं। कोई भी व्यक्ति एकबार ही उनके पास आकर उनका अपना बन जाता है। हे भारतीय संस्कृति के रक्षक! **आप अपनी विलक्षणकथा शैली से श्रोताओं को विभोर कर देते हैं।** माँ सरस्वती की आप पर असीम कृपा है। आप वेद-वेदान्त, उपनिषद्, दर्शन, काव्यशास्त्र व अन्य सभी धार्मिक ग्रन्थों पर जितना अधिकारपूर्ण प्रवचन करते हैं उतना ही दिव्य प्रवचन भगवान् श्रीकृष्ण की वाङ्मय मूर्ति महापुराण **श्रीमद्भागवत पर भी करते हैं।** आप सरलता एवं त्याग की दिव्य मूर्ति हैं। राष्ट्र के प्रति आपकी सत्यनिष्ठ स्पष्टवादिता एवं विचारों में निर्भीकता जन-जन के लिए प्रेरणादायक है। आपके दिव्य प्रवचनों में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की त्रिवेणी तो प्रवाहित होती है, साथ ही राष्ट्र का सागर भी उमड़ता है। जिसे आप अपनी सहज परन्तु सशक्त अभिव्यक्ति की गागर में भर कर अपने श्रद्धालु श्रोताओं को अवगाहन कराते रहते हैं।

आपका सामीप्य प्राप्त हो जाने के बाद जीव कृत्य-कृत्य हो जाता है। धन्य हैं वे माता-पिता जिन्होंने ऐसे 'पुत्ररत्न' को जन्म दिया। धन्य हैं वे सद्गुरु जिन्होंने ऐसा भागवत् रत्नाकर समाज को दिया। हे श्रेष्ठ सन्त शिरोमणि! हम सब भक्तगण आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर गौरवान्वित हैं।

साहित्य सृजन

आपने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से हिन्दी एवं संस्कृत के अनेक आयामों को महत्त्वपूर्ण साहित्यिक उपादान भेंट किये। काव्य, लेख, निबन्ध, प्रवचन संग्रह एवं दर्शन क्षेत्रों में आचार्यश्री की मौलिक रचनाएँ महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

इस प्रकार आचार्यश्री अपने व्यक्तित्व, कृतित्व से श्रीराम-प्रेम एवं सनातन धर्म के चतुर्दिक प्रचार व प्रसार के द्वारा सहस्राधिक दिग्भ्रान्त नर-नारियों को सनातन धर्मपीयूष से जीवनदान करते हुए अपनी यशःसुरभि से भारतीय इतिहास वाटिका को सौरभान्वित कर रहे हैं। तब कहना पड़ता है कि—

शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो नहि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने।।

❀ ❀ ❀

संत सरल चित जगतहित, जानि सुभाउ सनेहु।
बाल विनय सुनि करि कृपा, रामचरन रति देहु।।

धर्माचार्य परम्परा :–

भाष्यकार !

प्राचीन काल में धर्माचार्यों की यह परम्परा रही है कि वही व्यक्ति किसी भी सम्प्रदाय के आचार्यपद पर प्रतिष्ठित किया जाता था, जो उपनिषद्, गीता तथा ब्रह्मसूत्र पर अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तानुसार वैदुष्यपूर्ण वैदिक भाष्य प्रस्तुत करता था। जिसे हम 'प्रस्थानत्रयी' भाष्य कहते हैं, जैसे शंकराचार्य आदि। आचार्यप्रवर ने इसी परम्परा का पालन करते हुए सर्वप्रथम नारदभक्तिसूत्र पर ''श्रीराघवकृपाभाष्यम्'' नामक भाष्य ग्रन्थ की रचना की। उसका लोकार्पण १७ मार्च १९९२ को तत्कालीन उप राष्ट्रपति डॉ० शंकरदयाल शर्मा द्वारा सम्पन्न हुआ।

पूज्य आचार्यचरण के द्वारा रचित 'अरुन्धती महाकाव्य' का समर्पण समारोह दिनांक ७ जुलाई ९४ को भारत के राष्ट्रपति महामहिम डॉ० शंकरदयाल शर्मा जी के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ।

इसी प्रकार आचार्यचरणों ने एकादश उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा श्रीमद्भगवद्गीता पर रामानन्दीय श्रीवैष्णव सिद्धान्तानुसार भाष्य लेखन सम्पन्न करके विशिष्टाद्वैत अपनी श्रुतिसम्मत जगद्गुरुत्व को प्रमाणित करके इस शताब्दी का कीर्तिमान स्थापित किया है।

आप विदेशों में भी भारतीय संस्कृति का विश्वविश्रुत ध्वज फहराते हुए सजगता एवं जागरूकता से भारतीयधर्माचार्यों का कुशल प्रतिनिधित्व करते हैं।

आचार्यश्री के प्रकाशित ग्रन्थ

१. मुकुन्दस्मरणम् (संस्कृत स्तोत्र काव्य) भाग–१–२
२. भरत महिमा
३. मानस में तापस प्रसंग
४. परम बड़भागी जटायु
५. काका बिदुर (हिन्दी खण्ड काव्य)
६. माँ शबरी (हिन्दी खण्ड काव्य)
७. जानकी-कृपा कटाक्ष (संस्कृत स्तोत्र काव्य)
८. सुग्रीव की कुचाल और विभीषण की करतूत
९. अरुन्धती (हिन्दी महाकाव्य)
१०. राघव गीत-गुञ्जन (गीत काव्य)
११. भक्ति-गीता सुधा (गीत काव्य)
१२. श्री गीता तात्पर्य (दर्शन ग्रन्थ)
१३. तुलसी साहित्य में कृष्ण-कथा (समीक्षात्मक ग्रन्थ)
१४. सनातन धर्म विग्रह-स्वरूपा गौ माता
१५. मानस में सुमित्रा
१६. भक्ति गीत सुधा (गीत काव्य)
१७. श्रीनारदभक्तिसूत्रेषु राघवकृपाभाष्यम् (हिन्दी अनुवाद सहित)
१८. श्री हनुमान चालीसा (महावीरी व्याख्या)
१९. गंगामहिम्नस्तोत्रम् (संस्कृत)
२०. आजादचन्द्रशेखरचरितम् (खण्डकाव्य) संस्कृत
२१. प्रभु करि कृपा पाँवरि दीन्ही
२२. राघवाभ्युदयम् (संस्कृत नाटक)

आचार्यश्री के शीघ्र प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ

१. हनुमत्कौतुक (हिन्दी खण्ड काव्य)
२. संस्कृत शतकावली (क) आर्याशतकम् (ख) सीताशतकम् (ग) राघवेन्द्रशतकम् (घ) मन्मथारिशतकम् (ङ) चण्डिशतकम् (च) गणपतिशतकम् (छ) चित्रकूटशतकम् (ज) राघवचरणचिह्नशतकम्
३. गंगामहिम्नस्तोत्रम् (संस्कृत)
४. संस्कृत गीत कुसुमाञ्जलि
५. संस्कृत प्रार्थनाञ्जलि
६. कवित्त भाण्डागारम् (हिन्दी)

●

।। श्रीराघवो विजयतेतराम् ।।

आचार्यचरणानां बिरुदावली

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।
रामानन्दाचार्यं मन्दाकिनीविमलसलिलासिक्तम् ।
तुलसीपीठाधीश्वरदेवं जगद्गुरुं वन्दे ।।

श्रीमद् सीतारामपादपद्मपरागमकरन्दमधुव्रतश्रीसम्प्रदायप्रवर्तकसकलशास्त्रार्थ-महार्णवमन्दरमतिश्रीमदाद्यजगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यचरणारविन्दचञ्चरीक: समस्त-वैष्णवालंकारभूता: आर्षवाङ्मयनिगमागमपुराणेतिहाससन्निहितगम्भीरतत्वान्वेषण-तत्परा: पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणा: सांख्ययोगन्यायवैशेषिकपूर्वमीमांसावेदान्तनारद-शाण्डिल्यभक्तिसूत्रगीतावाल्मीकीयरामायण: भागवतादिसिद्धान्तबोधपुर:सरसमधि-कृताशेषतुलसीदाससाहित्य-सौहित्यस्वाध्यायप्रवचनव्याख्यानपरमप्रवीणा: सनातनधर्म-संरक्षणधुरीणा: चतुराश्रमचातुर्वर्ण्यमर्यादासंरक्षणविचक्षणा: अनाद्यविच्छिन्नसद्गुरु-परम्पराप्राप्तश्रीमद्सीतारामभक्तिभागीरथीविगाहनविमलीकृतमानसा: श्रीमद्रामचरित-मानसराजमराला: सततं शिशुरूपराघवलालनतत्परा: समस्तप्राच्यप्रतीच्यविद्या-विनोदितविपश्चित: राष्ट्रभाषागीर्वाणगिरामहाकवय: विद्वन्मूर्धन्या: श्रीमद्रामप्रेम-साधनधनधन्या: शास्त्रार्थरसिकशिरोमणय: विशिष्टाद्वैतवादानुवर्तिन: परमहंस-परिव्राजकाचार्यत्रिदण्डी वर्या: श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठा: प्रस्थानत्रयीभाष्यकारा: श्रीचित्रकूटस्थ-मन्दाकिनीविमलपुलिननिवासिन: श्रीतुलसीपीठाधीश्वरा: श्रीमद्जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्या: अनन्तश्रीसमलंकृतश्रीश्रीरामभद्राचार्यमहाराजा: विजयतेतराम् ।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

•

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

माण्डूक्योपनिषदि

श्रीराघवकृपाभाष्यम्

पदवाक्यप्रमाणपारावारीण-कवितार्किकचूडामणि-वाचस्पति-
जगद्गुरुरामानन्दाचार्य-स्वामि-रामभद्राचार्य-प्रणीतं,
श्रीमज्जगद्गुरु-रामानन्दाचार्यसम्प्रदायानुसारि-
विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तप्रतिपादकश्रीराघवकृपाभाष्यम् ।।

।। श्रीराघवो विजयते ।।
।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

।। अथ माण्डूक्योपनिषदि ।।

।।श्रीराघवकृपाभाष्यम् ।।

मङ्गलाचरणम्

कन्दावदान्तं जनपारिजातं नेत्रच्छविव्रीडितवारिजातम् ।
तं ब्रह्म रामं नयनाभिरामं सीता द्वितीयं कलये तुरीयम् ।।
यद् वेदान्तविदो विदन्ति विरजं विश्वं विभुं विश्वपं
यच्चाहुश्चिदचिद्विशिष्टमनघाद्वैतं परब्रह्म तत् ।
तन्मे नेत्रमलङ्कृषीष्ट सगुणं बालाकृतिश्यामलं
वासिष्ठी पुलिनेषु यत् किमपितन्नीलं महः खेलति ।।

।।माण्डूक्योपनिषदः शन्तिपाठः।।

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ँ सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।।
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वास्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

अथ शान्तिपाठो व्याख्यायते — हे देवाः द्योतनशीलाः ! वयं कर्णेभिः स्वकीय-श्रवणोन्द्रियैः भद्रं कल्याणकरमेव शृणुयाम । अत्र **बहुलं छन्दसि** इत्यनेन कर्णशब्दाददन्तादपि भिसो नैसादेशः । वयं यजत्राः जयन्ते इति यजत्राः बाहुलकात् कर्तर्यपित्रल्प्रत्ययः । अथवा यजनं यजः तं त्रायन्ते इति यजत्रा अनुपसर्गेऽपि यजोपपदत्राधातोः ''क'' प्रत्ययः, यज्ञत्राणतत्पराः वयमक्षिभिः नेत्रैः, ननु अक्षिशब्दात् भिसि अक्षिभिः कथँ न ? सत्यं अकारान्त एषः नेत्रवाची । अक्षम् - अक्षे - अक्षणि,

अत एव प्रत्यक्षं- समक्षं अध्यक्ष इत्यादि संगच्छते । तर्हि कथं नैसादेश: अक्षैरिति ? पूर्वोक्तदिशैवसमाधातव्यम् । बाहुलकादप्रवृत्ति: । एवम् अक्षभि: नेत्रै: भद्रं कल्याणमेव पश्येम । एवं स्थिरै: अङ्गै: स्वस्थै: अवयवै:, **तुष्टुवा ँ् सः** तुष्टवांस: अतिशयेन देवं स्तुवन्तो भवेम । यद् अस्माकमायु: जीवनं तत् तनूभि: शरीरै: देवहितं देवेभ्यो हितं भगवन्निमित्तमेव व्यशेमहि नियोजमहि ।। ॐशान्ति: ! शान्ति: ! शान्ति: !, त्रितापशमनार्थं शान्तिशब्दस्य त्रिरूच्चाररणम् ।।श्री:।।

अथ ओङ्कारशब्दस्य व्याख्यानभूतेयं द्वादशमन्त्रात्मिका माण्डूक्योपनिषत् । माण्डूक्यो नाम कश्चिदृषि: तेनेयमदर्शीत्यतो माण्डूक्योपनिषत् -

ओमित्येतदक्षरमिद ँ् सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव । यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ।।१।।

ओम् इति एतत् इदम् अक्षरं ब्रह्म सर्वमेव ओङ्कारस्य व्याख्याभूतम् । भूतं भूतकाल:, भवद् वर्तमानकाल:, भविष्यत् त्रिकालातीतं निरस्तहेयगुणकं समस्तहेयप्रत्यनीकगुणगणनिलयं ब्रह्म तदपि ओङ्कार एव जगत्कारणत्वात् ।।श्री:।।

अथ शरीरस्य जगत: कार्यभूतस्य कारणेन शरीरिणा भगवता सामानाधिकरण्यविधया तादात्म्यं सूचयति —

सर्व ँ् ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोयमात्मा चतुष्पात् ।।२।।

हि निश्चयेन एतत् सर्वं चिदचिदात्मकं जगत् ब्रह्म, ब्रह्मशरीरकम् । अयमात्मा परमात्मा ब्रह्म, यद् वा आप्नोतीत्यात्मा, अथवा शरीरशारीरि भावेन समानविभक्तिता । **यस्यात्मा शरीरम्** (श.प.ब्रा.१४) इति श्रुते: । अयमात्मा ब्रह्म ब्रह्मशरीरं, सोऽयं आत्मा परमात्मा चतुष्पात् चतुष्पाद्विभृतिनायक: । जीवस्य तिस्रोऽवस्था: प्रत्यवस्थं जीवात्मना सह शरीरे तिष्ठत्यन्तर्यामी परमात्मा । जाग्रदवस्थायां जीवेन सह शरीरे तिष्ठन् अन्तर्यामी विराट् कथ्यते, सहस्रशीर्षा स एव लक्ष्मण: । एवं स्वप्नावस्थायां जीवात्मना सह शरीरे तिष्ठन् अन्तर्यामी तैजसो हिरण्यगर्भो भवति, स एव शत्रुघ्न: । पुन: सुषुप्तौ जीवेन सह शरीरे वर्तमान: प्राज्ञ: स हि भरत: । पुनस्तुरीयावस्थायां जाग्रत्स्वाप्नसन्धौ जीवेन सह शरीरे तिष्ठन्नन्तर्यामी तुरीयो भवति स एव भगवान् रामचन्द्र: । इमे यथाक्रमं ओङ्कारस्य चतुरक्षरप्रकाशका: । अकारस्य लक्ष्मणो जाग्रदधिष्ठाता विराट्, उकारस्य शत्रुघ्न: स्वप्नस्वामी तैजसो हिरण्यगर्भ:, मकारस्य प्रकाशक: प्राज्ञ: सुषुप्तीशो भरत:, अर्धमात्रा प्रकाशको रामस्तुरीय परमेश्वर: । तद्यथा —

अकाराक्षरसंभूत: सौमित्रिर्विश्वभावन: ।
उकाराक्षरसंभूत: शत्रुघ्नस्तैजसात्मक: ।।

प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसंभवः ।
अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः ।।

श्रीरामोत्तरतापिन्युषित् - १-१ ।।श्रीः।।

अथ जागरितस्थानं विश्वं निरूपयति —

जागारितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः ।
स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ।।३।।

जागरितं जाग्रदवस्था स्थानं निवासो यस्य स जागरित स्थानः, एवं बहिः संसारविषयासक्ता प्रज्ञा यस्य स बहिःप्रज्ञः, तथा च स्थूलम् इन्द्रियसगोचरं भुङ्क्ते इति स्थूलभुक्, सप्त अग्निहोत्रक्रियाः वृहदारण्यकदर्शिताः अङ्गानि यस्य सः सप्ताङ्गः । तथा हि श्रुतिः —

तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरुपः प्राणः पृथग्वर्त्मात्मा सन्देहो बहुलो बस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादौ इति ।। एवम् एकोनविंशतिः दशेन्द्रियाणि, पञ्चप्राणाः चत्वार्यन्तःकरणानि मुखानि प्राप्तिद्वाराणि यस्य एकोनविंशतिमुखः । एवं स्थूलस्य भुक् भोक्ता इति प्राचामनुरोधेन । वस्तुतस्तु स्थूलानपि प्राकृतबुद्धीन् जीवान् भुनक्ति पालयति इति स्थूलभुक्, प्राचीनार्थे स्वीकृते परमात्मनि भोक्तृत्वापत्तौ । **अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति** (मु०उ० ३-१-१) इति श्रुतिर्व्याकुप्येत । एतेन **स एवं विशिष्टो वैश्वानरो यथोक्तैद्वारैः शब्दादीन्स्थूलान्विषयान्भुङ्क्त इति** स्थूलंभुक् मा०उ० ३ शांकरभाष्य इति शंकर वचनम्,

विश्वो हि स्थूलभुङ्नित्यं तैजसः प्रविविक्तभुक् ।
आनन्दभुक्तथा प्राज्ञस्त्रिधा भोगं निबोधत ।।

(मा०उ०गौ०का०३)

इति शङ्कराचार्यपरमगुरूणां गौडपादानामपि कारिका व्याख्यानं श्रुति विरुद्धत्वात् निरस्तम् । न हि कोऽपि धर्मावलम्बी आस्तिकोऽपि श्रुतिविरुद्धमपि कस्यचिद्व्याख्यानं समादृश्येत । ननु स्थूलं भुनक्तीति स्थूलभुक् इति भवद् व्याख्याने किं मानं ? अनश्नन्नन्यो (मु०उ० ३-१-१) इति श्रुतिरेव । अथ तर्हि **सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता** (तै०उ० १-१) इति श्रुतिः कथं संगच्छेत ? इति चेच्छृणु, ब्रह्मणा इति तृतीया, सा च सह इति सहार्थयोगे, स च सह शब्दः तृतीयान्तस्याप्रधानत्वद्योतकः । **सह युक्तेऽप्रधाने** पा०अ० २-३-१९, इति सूत्रानुरोधात् ।

एवं भोगे जीवस्य मुख्यकर्तृत्वे सहार्थयुक्ततृतीयार्थब्रह्मणो भोगे अप्रधानकर्तृत्वस्य विवक्षणेनादोषात् ।

अत एवं -

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।

गीता ९-२६

इति भगवद्वाक्यं सुसंगतम् । तस्मादचिद् भोग्यं, चिद्भोक्ता, तद् विशिष्टः परमेश्वरो भगवान् प्रेरयिता, इत्येव राद्धन्तयामः । अत एव श्वेताश्वतरोपनिषदि भगवती श्रुतिः साटोपं विशिष्टाद्वैतवादमेव सिद्धान्तयन्ती ब्रह्मत्रैविध्यनिरूपणावसरे चितं जीवात्मानं भोक्तारम् , अचितं जगद्भोग्यं, तद् विलक्षणं परमात्मानं प्रेरयितारं प्रत्यपीपदत् । तद्यथा —

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किंचित् ।
भोक्त भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् ।।

(श्वे० उ० १-१२)

इत्यनेन विशिष्टाद्वैतवादः स्पष्टं समर्थितः । एवं स्थुलप्रपंचस्य पालकः विश्वेषां नराणामयं वैश्वानरः, विश्वेनराः यस्मिन् स वैश्वानरः इति विग्रहे **नरे संज्ञायाम्** (पा० अ० ६-३-१२९) इत्यनेन विश्वशब्दघटकह्रस्वाकारस्य दीर्घः । वैश्वानरः स एव प्रथमः पादः, भगवद् विभूत्यंशविशेषः लक्ष्मणः विराट् । अत एव मानसे —

शेष सहस्त्रशीष जग कारन । जो अवतरेउ भूमि भय टारन ।।

(मानस १-१७-७) ।।श्रीः।।

अथ तैजसं निरूयति —

स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविशतिमुखः
प्रविविक्तभुक्तैजसो द्वितीयः पादः ।।४।।

परमात्मनः द्वितीयः पादः तैजसः तेजोमयः, स च स्वप्न स्थानः, स्वप्ने तिष्ठति इति स्वप्नस्थानः स्वप्नावस्थः विभुः । स च सप्ताङ्गः । एकोनविंशतिमुखः पूर्ववद् दशेन्द्रियचतुरन्तःकरणपञ्चप्राणप्रापकद्वारः । प्रविविक्तं शयानं जीवात्मानं भुनक्ति इति प्रविविक्तभुक् एष द्वितीयपादभूतः शत्रुघ्नः ।।श्रीः।।

अथ सुषुप्तिस्थानं निरूपयति —

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम् । सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक्चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ।।५।।

यत्र यस्यामवस्थायां सुप्तः न वा कञ्चन कामं कामयते इच्छति, न वा कंचन स्वप्नं पश्यति प्रगाढनिद्रावशात् तद् अवस्थानं सुषुप्तं कथ्यते । तत्र तिष्ठन् अयमात्मा परमात्मा आनन्दमयः आनन्दप्रचुरः आनन्दस्वरूपश्च । अत एव आनन्दभुक् , आनन्दं भुनक्ति तथा भूतः, न तु आनन्दं भुङ्क्ते इति आनन्दभुक् । अतः परमात्मा आनन्दसिन्धुः कथ्यते, सिन्धुर्न जलं भुङ्क्ते, किन्तु भुनक्ति । अत एव मानसकाराः —

जो आनन्द सिन्धु सुखरासी । सीकर ते त्रैलोक सुपासी ।।
(मानस १-१९७-५)

स च चेतोमुखः चेतः चित्तं मुखं प्राप्तिद्वारं यस्य स चेतोमुखः, एवं भूतः, अनेकः एकः संपद्यमानः एकीभूतः, प्रतिशरीरं विभक्तोऽपि एकः । अतः प्रज्ञानघनः, प्रज्ञानविग्रहः प्राज्ञ एव तृतीयः पादः, स च भरतः ।।श्रीः।।

अथ प्राज्ञं विशिनष्टि —

एष सर्वेश्वर एव सर्वज्ञः एषोऽन्तर्याम्येष योनिः
सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ।।६।।

अयमेव सर्वेषाम् ईश्वरः सर्वेश्वरः, एषः सर्वज्ञः सर्वं जानाति तथाभूतः, एष एव अन्तर्यामी सर्वशरीरित्वात् सर्वनियन्त्रितत्वाच्च । अयमेव सर्वस्य चिदचद्वर्गस्य योनिः कारणम्, अयमेव भूतानां प्राणिनां प्रभवाप्ययौ उत्पत्तिप्रलयौ, इदं प्राचीनानुरोधेन । वस्तुतस्तु **एष सर्वेश्वर** इति मन्त्रः तुरीयतत्वं विशिनष्टि । अत एव एषः जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिबहिर्भूतः तुरीयः परमात्मा श्रीराम एव सर्वेश्वरः, सर्वज्ञः, अन्तर्यामी, सर्वस्य योनिः, भूतानां प्रभवाप्ययौ । अत एव वाल्मीकीयरामायणे श्रीराम एव सर्वाणि विशेषणानि संघटन्ते । यथा "सर्वेश्वरः" **स्वामीलोकस्य राघवः** (वा०रा० ६-११७-११) **सर्वज्ञः**

न भवन्तं मतिश्रेष्ठं समर्थं वदतां वरम् ।
आतिशाययितुं शक्तो बृहस्पतिरपि ब्रुवन् ।।
(वा०रा० ६-१७-५१)

अन्तर्यामी त्वं धारयसि भूतानि पृथिवीं सर्वपर्वतान् ।।

(ब्रा०रा०६-११७-२३)

सर्वस्य योनिः प्रभवाप्ययौ -

सर्वाल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान्सचराचरान् ।
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः ।।

(बा.रा. ५-५१-३९)

सर्वेश्वरत्वे स्पष्टमाह —

सर्वलोकेश्वरस्येह कृत्वा विप्रियमीदृशम् ।
रामस्य राजसिंहस्य दुर्लभं तव जीवितम् ।।

(बा.रा.५-५१-३९)

किं च गोस्वामि तुलसीदासनये श्रीरामस्तुरीयः, वैश्वानरो जागरितस्थानो लक्ष्मणः, स्वप्नस्थानस्तैजसः शत्रुघ्नः, सुषुप्तिस्थानः प्राज्ञो भरतः, इति पूर्वमपि श्रुतिप्रमाणं दर्शितम् ।

अत एव चतस्रोऽवस्था उपमानभूताः यथाक्रमं चतसृणां उर्मिलाश्रुतिकीर्तिमाण्डवी-सीतानाम् । तद्यथा प्राह भगवान् मानसकारस्तुलसीदासः —

सुंदरी सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं ।।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था विभुन सहित विराजहीं ।।

(मानस १-३२५-४)

अतएव तृतीय सोपाने गोस्वामिपादाः प्राहुः —

जगद्गुरुं च शाश्वतं तुरीयमेव केवलम् ।।

(मानस.३-३.९)

पुनश्च तुरीयमिमं रामचन्द्रमेव गोस्वामितुलसीदासमहाराजाः असकृदन्तर्यामी इति समघोषयन् । यथा -

अन्तरजामी राम सकुच सप्रेम कृपायतन

(मानस२-२०१)

विनती बहुत करौं का स्वामी । करुनामय उर अन्तरजामी ।।

(मानस २-६६-८)

जानतहूँ पूछिय कस स्वामी । सबदरसी तुम्ह अन्तरजामी ।।

(मानस ३-८-७)

एवं श्रीसीतामपि रामाभिन्नतया प्रतिपादयन् तामपि समानत्यन्तर्यामित्वेन तुलसीदासः —

अंतरजामी राम सिय तुम्ह सरवग्य सुजान ।
जौं फुर कहहुं त नाथ निज कीजिय वचन प्रवान ।।

(मानस २-२५६)

एवं यदि शांकरमतेन **एषः सर्वेश्वरः** इति मन्त्रः तृतीयपादरूपस्य प्राज्ञस्यैव व्याख्यानं, तर्हि एक एव प्राज्ञः कथं सर्वज्ञः स्यात् ? एवं तस्यान्तर्यामित्वे श्रीतुलसीदासाभिप्रेततुरीयश्रीसीतारामान्तर्यामित्वं विरुद्धयेत । ननु विरुद्धयतां कामं, न तुलसीदासः कश्चिदृषिः स तु लोकभाषाकविः ? अहो ! इति प्रलपतस्ते कथं न रसना ते विशीर्यते । श्रीतुलसीदासो भाषाकवित्वेऽपि भगवद् वेदव्यासवचनात् महर्षिवाल्मीक्यवतारः साक्षान्महर्षिः, अतस्तद्वाक्यं पुराणमिव परतः प्रमाणकोटिमाटीकते । तथा हि भविष्योत्तरपुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्थाध्याये उमामहेश्वरसंवादे वेदव्यासवचनम्—

वाल्मीकिस्तुलसीदासः कलौ देवि भविष्यति ।

रामचन्द्रकथां साध्वि भाषावद्धां करिष्यति ।।

यदि त्वं पुराणमपि न मन्येथाः ? तर्हि त्वादृक्षेण नास्तिकशिरोमणिना सह सम्भाषणमपि निरयाय । ततो मदुक्त एव पन्था ज्यायान् । अनेन त्वत्कल्पितव्यष्टिसमष्टि-ज्ञानकल्पना गौरवमपि न स्यात् । तस्मात् प्राज्ञस्तृतीयः पादः सर्वज्ञस्तुतीयः । किं च अथर्वश्रुतिः भरतं प्राज्ञं प्राह —

प्राज्ञात्मकस्तु भरतः स च नान्तर्यामी । अन्तर्यामी रामः स च न प्राज्ञः । अतोऽयं मन्त्रः तुरीयव्याख्यानपरः ।।श्रीः।।

अथ तुरीयं स्वरूपतो लक्षयन्तीर श्रुतिः तद् विज्ञेयत्वमाह —

नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानधनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चो-पशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ।।७।।

ननु यदि पूर्वोक्तं पादत्रयं परमात्मा सबन्ध्येव तर्हि किमनेन प्रतिषेधवचनेन ? इति चेदुच्यते—पूर्वोक्ताः त्रयः पादाः ज्ञेयाः, चतुर्थश्च विज्ञेयः, इति विशेषः । आत्मशब्दोऽत्र परमात्मपरः स च शरीरानवच्छिन्नः, यद्यपि जाग्रदाद्यवस्थावच्छिन्नः परमेश्वरोऽपि न विकारवान् , विकारास्तु विशेषणे ह्यचिति तथापि कार्यब्रह्मैव तत् पादत्रयावच्छिन्नम् । तुरीयमेव कारणं ब्रह्म, अतो निषेधन्त्यवस्थात्रयावच्छिन्नं श्रुतिः प्राह— **नान्तः प्राज्ञयम्** न विद्यतेऽन्तःप्रज्ञा यस्मिन्, अर्थात् अन्तःप्रज्ञ प्रविविक्तभुक् तैजसं नेदम् । न बहिःप्रज्ञं बहिर्जगति प्रज्ञा ज्ञानं यस्य तद् बहिःप्रज्ञं जाग्रदवच्छिन्नमपि नेदं ततोऽपि विलक्षणम् । तर्हि द्वयोरन्तरालेन भवितव्यम् ? अत आह - **उभयतः** जाग्रत्स्वप्नयोः प्रज्ञा ज्ञानं यस्य तत् उभयतः प्रज्ञं न नेदं ततोऽपि व्यतिरिक्तम् । तर्हि आनन्दभुजा भवितव्यम् ? अत आह- प्रज्ञानघनं सुषुप्तावस्थं घनप्रज्ञमपि नेदम् । तर्हि मुक्तात्मना भविव्यं नित्यज्ञानवता ? अत आह-न प्रज्ञं प्रज्ञा नित्यमस्त्यस्मिन् इति प्रज्ञं नेदं मुक्तात्मा । तर्हि बद्धेन भवितव्यम् ? अत आह - नाप्रज्ञं, अप्रज्ञा बुद्ध्यभावो नित्यं यस्मिन् तत् अप्रज्ञं संसारसागरसरणशीलं विस्मृतश्रीरामललित लीलम् अप्रज्ञं बद्धजीवजातमपि नेदम् । तर्हि शून्यतेमम् ? इत्यत आह- अस्ति पूर्णं किन्तु **अदृश्यं**, प्राकृतचक्षुषा न दृश्यते । **अव्यवहार्यम्** प्राकृतशरीरेण न व्यवहर्तुं शक्यते, यद्वा वाचा न व्यवहार्यम् । **अग्राह्यम्** प्राकृतहस्ताभ्यां न गृहीतुं शक्यते । **अलक्षणम्** नानुमातुं प्रभूयते । अचिन्त्यम् नैव चेतसा चिन्तनविषयः क्रियते । अत एव **अव्यपदेश्यम्** अतीतनामरूपत्वात् न व्यपदिश्यते । अतः एकः आत्मा परमात्मा इत्येव प्रत्ययो विश्वासः सारः तत्वं यस्य तथाभूतः, तत् । एवं **प्रपञ्चोपशमम्** बाह्य प्रपञ्चानाम् उपशामकम् अत एव **निरुपद्रवम्** अत एव **शान्तं** परमशान्तिमयम् । पुनश्च **शिवम्** सकलकल्याणगुणाकरं, **द्वैतम्** जगति स्वनिर्मितातिरिक्तभावना न विद्यते द्वैतं यस्मिन् तत् अद्वैतं, जगदेव स्वजनितं मन्यमानम् । एवं भूतं विलक्षणं परमात्मानं चतुर्थं चतुर्थचरणं मन्यन्ते । यद्वा दशरथस्य चतुर्थं पुत्रं श्रीरामं मन्यन्ते, स्वीकुर्वन्ति वसिष्ठादयः । स आत्मा परमात्मा । यथा प्राह श्रीमद्रामायणे मन्दोदरी - **व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः** ।। (वा.रा. ६-१११-९९)

स विज्ञेयः विशिष्टाद्वैततरीत्याज्ञातव्यः ।।श्रीः।।

अथ मात्रापादयोः अभेदं वर्णयति —

सोऽयमात्माऽयक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा
मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ।।८।।

अयं आत्मा परमात्मा अध्यक्षरं प्रणवस्य अर्धमात्रायामधितिष्ठति । अकार-उकार-मकार इति ह्रस्व दीर्घ प्लुतमात्राः इमे एव त्रयः पादाः ।। श्रीः।।

अथ जागरितस्थानं निरूपयति —

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्ते-रादिमत्त्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेदा ।।९।।

अकार: वैश्वानरेणाधिष्ठीयते, य एवं वेद स: सर्वान् कामान् प्राप्नोति ।। श्री: ।।

अथ द्वितीयं निरूपयति —

स्वप्नस्थानस्तैजसउकार द्वितीया मात्रोत्कयर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद।।१०।।

उकार: स्वप्नस्वामी तैजस:, य: एवं वेद स विज्ञानपरम्परां तनोति । तस्य कुले कोऽपि ब्रह्मज्ञानहीनो न भवति ।। श्री:।।

अथ तृतीयं निरुपयति —

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रामितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ।।११।।

तृतीय: पाद: मकार:, स एव प्राज्ञ:, सैव तृतीय मात्रा तस्या: मिति: अपीतिश्च नाम । एवं जानन् मिनोति सर्वमनुमानविषयी करोति ।। श्री:।।

अथ चतुर्थपादं निर्दिशति —

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद ।।१२।।

स: अमात्र: मात्राविहीन:, अत एव व्यवहारानर्ह: शिव: अद्वैत: स्वसमानप्रतियोगिज्ञानवर्जित:, स एव आत्मा परमात्मा, एवमखण्ड ओङ्कारे अखण्ड: परमात्मा श्रीराम: । य: एवं वेद जानाति, स आत्मना स्वेनैव देहेन्द्रियमनोबुद्धि-व्यतिरिक्तेन भगवन्नित्यकिङ्करभूतेन पूतेन प्रत्यगात्मना आत्मानं परमात्मानं संविशति, सामीप्यमुक्त्या तं प्रविशति । द्विरुक्ति: उपनिषत् समाप्तिसूचिका ।।श्री:।।

श्रीराघवकृपाभाष्यं माण्डूक्योपनिषत्विदम् ।
श्रीरामभद्राचार्येण भाषितं रामभक्तये ।।

इति श्रीचित्रकूट तुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिश्रीरामभद्राचार्यप्रणीतं श्रीराघवकृपाभाष्यं माण्डूक्योपनिषदि सम्पूर्णम् ।।

।। श्री राघवः शन्तनोतु ।।

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

माण्डूक्योपनिषद्

श्रीराघवकृपाभाष्य

श्री माण्डूक्योपनिषद् का
पदवाक्यप्रमाणपारावारीण-
कवितार्किकचूडामणि वाचस्पति-
श्री जगद्गुरूरामानन्दाचार्य स्वामि रामभद्राचार्य-
प्रणीत श्रीमज्जगद्गुरूरामानन्दाचार्यसम्प्रदायानुसारि
विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्त-प्रतिपादक श्रीराघवकृपाभाष्य ।।

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

अथ माण्डूक्योपनिषदि

श्रीराघवकृपाभाष्यम्

।। मङ्गलाचरण ।।

कन्दावदान्तं जनपारिजातं नेत्रच्छविव्रीडितवारिजातम् ।
तं ब्रह्म रामं नयनाभिरामं सीताद्वितीयं कलये तुरीयम् ।।१।।

यद् वेदान्तविदो विदन्ति विरजं विश्वं विभुं विश्वपं
यच्चाहुश्चिदचिद्विशिष्टमनघाद्वैतं परब्रह्म तत् ।
तन्मे नेत्रमलङ्कृषीष्ट सगुणं बालाकृति श्यामलं
वासिष्ठी पुलिनेषु यत् किमपि तन्नीलं महः खेलति ।।२।।

प्रणवऊँ गनपगौरि गिरजापति हरि दिन नाथहिं ।
हृदय राखि सियराम धरे धनुसर कट भाथहिं ।।
श्रुति सिद्धान्त प्रमाण मानमद संशय भंजन ।
सरस विशिष्टाद्वैत वाद वैष्णव जन रंजन ।।
माण्डूक्योपनिषद् विसद भाष्य जथामति भाषिये ।
रामभद्र आचार्य श्रीराघव कृपाभिलाषिये ।।

शान्तिपाठः

ॐ भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ँ सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।।
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वास्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्योंऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।
ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

इसकी व्याख्या की जा चुकी है। तथापि रोचक अर्थ के साथ फिर व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है। 'कर्म' शब्द यद्यपि अकारान्त है फिर भी बाहुलकात् ऐस का अभाव और अकार को एत्व करके कर्णेभिः शब्द निष्पन्न हुआ। इसी प्रकार अकारान्त 'अक्ष' शब्द से भिस् विभक्ति ऐस आदेश का अभाव और एत्व की अप्रवृत्ति होने से शब्द साधु हुआ। यह भद्र सूक्त का प्रथम मन्त्र है। देवताओं से प्रार्थना करके यजमान कहता है— हे देवताओ ! हम अपनी श्रवणेन्द्रियों से सदैव भद्र शब्द और भद्र समाचार ही सुनें। हे यज्ञों की रक्षा करनेवाले देवताओं ! हम अपने नेत्रों से सदैव भद्र दर्शन ही करें। हम स्थिर अंगों से युक्त होकर परमेश्वर की स्तुति करते हुए अपने जीवन की शेष आयु को देवहित अर्थात् दैवी सम्पत्ति वाले महानुभावों के हित में लगा दें। इसका दूसरा अर्थ छन्दोबद्ध पद्य में देखिये—

देवताओं शक्ति दो श्रवण कूट मध्य हम,
भद्र रामभद्र गुणगणपुष्प ही चुनें।
यज्ञ रक्षकों अशीषों नेत्र चसकों से सदा,
रामभद्र रूपसुधा पी के आनन्द गुने ।।
स्थिर अवयवों से प्रशंसें नित रामभद्र,
तनु से सुजस रामभद्र ताग ही बुने।
रामभद्राचार्य रामभद्र के चरित मिस,
आजीवन आयुघृत देवहित में हुने ।। श्री ।।

सम्बन्ध– अब बारह मन्त्रों में वर्णित सबसे छोटी माण्डूक्य उपनिषद् पर श्रुतिसम्मत स्वसम्प्रदायानुमोदित विशिष्टाद्वैतपरक श्री राघवकृपाभाष्य प्रस्तुत किया जा रहा है। यद्यपि इस पर भगवत्पाद शंकराचार्य का बहुत ही

कर्णप्रिय भाष्य है, और इस पर बहुत से श्लोकों में शंकराचार्य के भी दादागुरु श्री गौडपादाचार्य की अद्वैतवादनिरूपिणी सिद्धान्तकारिका भी है। किन्तु वह पक्षपातपूर्ण तथा पूर्वाग्रहग्रस्त बुद्धिप्रसूत होने के कारण सर्वग्राह्य नहीं हो सकी। अत: अब मैं श्रुति के अक्षरों के अनुसार श्रीराघवकृपाभाष्य नाम से एक सुविचारित व्याख्यान प्रस्तुत कर रहा हूँ। यहाँ यह ध्यान रहे कि शंकराचार्य के मत में एक ही चैतन्य उपाधि रहित होकर परमेश्वर, शुद्ध सत्वोपाध्यवच्छिन्न होकर ईश्वर तथा मलिन सत्वोपाधि से युक्त होकर जीवात्मा बन जाता है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं में समष्टि-व्यष्टि के विभाग से एक ही शरीर में यह छह प्रकार से प्रतीत होता है। अर्थात् जब समस्त संसार का एक धर्म से बोध कराना होता है तब समष्टि का प्रयोग किया जाता है और जब एक शरीरनिष्ठ चैतन्य का बोध कराना होता है तब इसे व्यष्टि कहा जाता है जो शंकराचार्य की भाषा में समष्टि-व्यष्टि है। वही न्याय की भाषा में जाति और व्यक्ति। जाग्रत् अवस्था का समष्टि चैतन्याभिमानी देवता विराट् तथा व्यष्टि चैतन्याभिमानी देवता विराट् विश्व होता है। इसी प्रकार स्वप्नावस्था का समष्टि चैतन्याभिमानी देवता हिरण्यगर्भ तथा व्यष्टि चैतन्याभिमानी देवता तैजस् होता है। इसी प्रकार सुषुप्ति अवस्था का समष्टि चैतन्याभिमानी देवता सर्वज्ञ ईश्वर तथा व्यष्टि चैतन्याभिमानी देवता प्राज्ञ जीवात्मा होता है। तुरीयावस्था जीव की नहीं होती इसलिए वहाँ अवस्था और चैतन्याभिमानी में कोई भेद नहीं होता। वही अनुपहित चैतन्य निर्गुण ब्रह्म परमेश्वर तुरीयावस्था तथा तुरीय चैतन्य आदि नामों से जाना जाता है। परन्तु जब स्वस्थ मन से विचार किया जाता है तो इससे ठीक विपरीत ही अनुभूति होती है। वस्तुत: यदि कोई भी पूर्वाग्रही स्वभाव छोड़ कर माण्डूक्य उपनिषद् के मन्त्राक्षरों पर विचार करेगा तो उसे यह बात भली-भाँति स्पष्ट हो जायेगी कि— जो कुछ अब तक अद्वैतियों के पक्ष से कहा गया उसका माण्डूक्य उपनिषद् के मन्त्राक्षरों से कुछ लेना देना नहीं है। यह उपनिषद् देखने से कोई भी इतना तो बड़ी सुगमता से समझ लेगा कि इस उपनिषद् के बारहों मन्त्र प्रणव की मात्राओं के विचारार्थ प्रस्तुत हुए हैं। महर्षि माण्डूक्य ने इन बारहों मंत्रों के दर्शन किये और यह गोपनीय ब्रह्मविचार है, इसलिए इसे माण्डूक्योपनिषद् कहते हैं॥ श्री॥

अत: आइये अब बहुत काल से विवादपंक में फँसी हुई इस उपनिषद् कामधेनु को श्रीराघवकृपाभाष्य नामक विचार गंगाजल में स्नान करा दें ।। श्री ।।

ओमित्येतदक्षरमिद ँ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद् भविष्य-दिति सर्वमोङ्कार एव । यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– इस मन्त्र में कार्य और कारण भेद से ब्रह्म दो प्रकार से चर्चित हुआ है। ओंकार यही अक्षर ब्रह्म है और यही यह सब संसार भी है। अर्थात् सारा संसार प्रणव से अभिन्न परमात्मा का शरीर होने से ओंकार से अभिन्न है। जो भी भूत भविष्यत् और वर्तमान काल में विभक्त जगत् है वह सब ओंकार रूप परमात्मा का उपव्याख्यान अर्थात् विस्तार है। यहाँ तक कार्यब्रह्म की चर्चा की गयी, इससे अतिरिक्त जो त्रिकालातीत अर्थात् जो तीनों कालों और तीनों गुणों से परे है वह काल कारण ब्रह्म ओंकार ही है ।। श्री ।।

संगति– अब दूसरे मन्त्र में शरीरभूत जगत् का शरीरीकारण ब्रह्म से तादात्म सूचित करते हैं ।। श्री ।।

सर्व ँ ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात् ।।२।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– यह सब कुछ ब्रह्म है क्योंकि सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म का शरीर है। 'यस्य पृथ्वी शरीरं' (बृ०उ० ३-७-३३) इत्यादि श्रुतियाँ प्रमाण हैं। यह आत्मा भी ब्रह्म है, अर्थात् ब्रह्म का शरीर है। शतपथब्राह्मण में जीवात्मा को भी ब्रह्म का शरीर कहा गया है। "यस्य आत्मा शरीरम्" (शतपथ ब्राह्मण-१४) इसीलिए यहाँ दोनों परमात्मा का वाचक है। यह परमात्मा ही ब्रह्म है। जो ब्रह्म जगत् के अभिन्ननिमित्तोपादान कारण हैं वही यह परमात्मा चतुष्पाद् कहे जाते हैं। अर्थात् चतुष्पाद् विभूति के नायक हैं। यहाँ पाद शब्द अंश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। श्रुति ने समझने के लिए ही ईश्वर में चार अंशों में कल्पना की है। जीव की जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीया इन चारों अवस्थाओं में जीवात्मा के साथ परमात्मा भी अन्तर्यामी रूप में जीवात्मा के शरीर में निवास करते हैं। जागृत अवस्था में जीवात्मा के साथ रहने वाले अन्तर्यामी भगवान् को विराट् कहते हैं। यही प्रणव के अकार को प्रकाशित

करने वाले भगवान् लक्ष्मण हैं। स्वप्नावस्था में जीवात्मा के साथ रहने वाले अन्तर्यामी को तैजस् हिरण्यगर्भ कहते हैं। यही प्रणव के ऊकार के प्रकाशक कुमार शत्रुघ्न हैं। सुषुप्त अवस्था में जीवात्मा के साथ रहने वाले अन्तर्यामी को प्राज्ञ कहते हैं, यही प्रणव के मकार के प्रकाशक श्रीभरत लाल जी हैं। जाग्रत् और सुषुप्ति की सन्धि रूप तुरीयावस्था में जीवात्मा के साथ रहने वाले अन्तर्यामी तुरीय चैतन्य परमेश्वर हैं। यही प्रणव की अर्धमात्रा को प्रकाशित करने वाले भगवान् राम हैं। यही चारों विभु हैं, और इनकी चारों अवस्थायें क्रम से जाग्रत् उर्मिला, स्वप्नावस्था श्रुतिकीर्ति, सुषुप्त अवस्था माण्डवी और तुरीयावस्था भगवती सीता हैं॥ श्री॥

"जनु जीव उर चारेउ अवस्था विभुन सहित विराजहीं"

—(मानस- ३२५-१४)

श्रीरामोत्तरतापिनी उपनिषद् में भगवति श्रुति यही कहती हैं—

अकाराक्षरसंभूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः।
उकाराक्षरसंभूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः॥
प्रज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसंभवः।
अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः॥

—(श्रीरामोत्तरतापिन्युषित् १-१-११)

इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि ये चारों परमात्मा ही हैं, जीवात्मा नहीं। विश्व, तैजस्, प्राज्ञ ये अन्तर्यामी परमात्मा के ही नाम हैं, जीवात्मा के नहीं॥ श्री॥

संगति– अब जागृत अवस्था के विभुविश्व का निरूपण करते हैं॥ श्री॥

जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः।
स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः॥३॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– जाग्रत् अवस्था में रहनेवाला विभु बहिष्प्रज्ञ होता है। अर्थात् वह अपने प्रज्ञान से जीवात्मा को बाहरी प्रपंच का बोध कराता है। वह उन्नीस मुखों वाला अर्थात् दश इन्द्रिय, पांच प्राण और चार अन्तःकरणों से प्रतीत होता है। उसके सात अङ्ग होते हैं, जो वृहदारण्यक में वर्णित हैं। जैसे— मूर्धा, सुतेजा, चक्षुः, विश्वरूप, प्राण, पृथक वर्तमा,

आत्मा, संदेह, बहुल, बस्ति, रयि, पृथ्वी, पाद। इस प्रकार यह वैश्वानर स्थूल का भोक्ता है। वही प्रथम पाद और ओंकार के अकार का देवता है। वास्तव में यह व्याख्या प्राचीनों के अनुरोध से की गई है। सत्यतः परमात्मा स्थूल के भोक्ता नहीं हैं क्योंकि उन्हें मुण्डकोपनिषद् (३-१-१) में अनश्नन् अर्थात् न खाने वाला कहा गया है। इसलिए 'स्थूलानि भुनक्ति इति स्थूलभुक्' अर्थात् जो स्थूल बुद्धि वाले जीवों का भी पालन करता है उसे स्थूलभुक् कहते हैं। इस प्रकार व्याख्या करनी चाहिए। भुज् धातु का पालन अर्थ मान कर परस्मैपदविग्रह में क्विप् प्रत्यय कर लेना चाहिए। इस व्याख्यान से माण्डूक्य उपनिषद् में स्थूलभुक् शब्द पर शंकराचार्य का वह व्याख्यान निरस्त हो जाता है, जिसमें उन्होंने वैश्वानर को स्थूल विषयों का भोग करनेवाला बताया है। क्योंकि इससे मुण्डकोपनिषद् का अनश्नन् शब्द स्पष्ट रूप से विरुद्ध हो जायेगा, और शंकराचार्य ही नहीं, प्रत्युत् उनके दादागुरु श्रीगौडपादाचार्य की वह कारिका भी श्रुति विरुद्ध हो गई जिसमें उन्होंने परमात्मा को स्थूल विषयों का भोक्ता सिद्ध किया। जैसे—

विश्वो हि स्थूलभुङ्नित्यं तैजसः प्रविविक्तभुक्।
आनन्दभुक्तथा प्राज्ञस्त्रिधा भोगं निबोधत॥

—*(मा०उ०गौ०का०३)*

अर्थात् विश्व स्थूल विषयों का, तैजस् प्रविक्ति विषयों का तथा प्राज्ञ आनन्द का भोक्ता है। इस प्रकार भोग के तीन भेद समझो। इस कारिका से भी श्रुति का स्पष्ट विरोध है। क्योंकि कोई भी धर्मावलम्बी आस्तिक श्रुति-विरुद्धवचन का कभी-भी आदर नहीं करता॥ श्री॥

यदि कहें स्थूलभुक् शब्द में आपने ने जो स्थूलों का पालनकर्त्ता अर्थ किया है, इसमें क्या प्रमाण है। वह मेरा निवेदन है 'अनश्नन् अन्यः' (मुण्डक– ३-१-१) श्रुति ही प्रमाण हैं। यदि कहें कि तैत्तरीयोपनिषद् में प्रथमवल्ली के प्रथम मन्त्र में यह कहा गया है कि परमेश्वर के साथ सभी जीव सभी कामनाओं का भोग करता है "सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता' (तै०उ०- १-१) यहाँ ब्रह्म को स्पष्ट भोक्ता कहा गया है। अब इस श्रुति का विरोध कैसे समाप्त होगा ?

उत्तर– यहाँ ब्रह्मणा शब्द में 'सह' के योग में तृतीया हुई है।

'सह युक्तेऽप्रधाने' (पा०अ०- २-३-१९) के अनुसार अप्रधान अर्थ में ही सह के योग में तृतीया होती है। अर्थात् यहाँ भोग में ब्रह्म अप्रधान है और जीव प्रधान। इसलिए प्रधानरूप से ब्रह्म अभोक्त ही है। इसलिए अनश्नन् श्रुति का विरोध नहीं हुआ। इसीलिए गीता (९-२६) में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं— जो भक्त मुझे भक्तिपूर्वक पत्र, पुष्प, फल, देता है मैं उसी को ग्रहण करता हूँ। इससे भगवान् का भोग में स्वातन्त्र्य नहीं सिद्ध होता। इसीलिए श्वेताश्वतरोपनिषद् में भगवती श्रुति जीव को भोक्ता, जगत् को भोग्य, और जगदीश को प्रेरक सिद्ध करती हैं। और यही मेरा सिद्धान्त भी है। देखिये— श्वेताश्वतरोपनिषद् के बारहवें मन्त्र में भगवती श्रुति डंके की चोट पर विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादन करती हुई कहती हैं— नित्य ही अपने अन्दर ही विराजमान इन तीन तत्वों को जानना चाहिए। जीव को भोक्ता, अचिद्जगत् को भोग्य और उन चिदचिद् से विशिष्ट परमात्मा को प्रेरक मान कर इससे अतिरिक्त कुछ भी जानना नहीं चाहिए। यही तीन प्रकार का ब्रह्मज्ञान है। इस प्रकार स्थूल प्रपंच के पालक भगवान् वैश्वानर ही प्रथम पाद हैं। 'विश्व' अर्थात् सम्पूर्ण नर जिसमें रहते हैं उन्हें वैश्वानर कहा जाता है। यहाँ विश्व के साथ नर शब्द का बहुव्रीहि समास करके विश्वशब्दघटक ह्रस्व अकार को 'नरे संज्ञायाम्' (६-३-१२९) सूत्र से दीर्घ करके स्वार्थ में अण् प्रत्यय आदिवृद्धि करने से वैश्वानर शब्द सिद्ध हो जाता है। यही वैश्वानर भगवान् लक्ष्मण हैं। जैसा कि मानस में कहा गया है—

शेष सहस्त्रशीष जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय हारन।।

—*(मानस- १-१७-७)*

यही प्रणव के अकार के देवता हैं।। श्री।।

संगति— अब तैजस् का निरूपण किया जाता है।। श्री।।

स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः।
प्रविविक्तभुक्तैजसो द्वितीयः पादः।।४।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ— स्वप्नावस्था में विराजमान विभु तैजस् हैं और अन्तःप्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा को अन्तर्जगत् का ज्ञान कराते हैं। क्योंकि इनमें तेज की प्रचुरता है। ये भी वैश्वानर की भाँति दश इन्द्रिय, पंच प्राण,

चार अन्तःकरण इन उन्नीस मुखों वाले तथा अग्निहोत्र के सातों अंगों से युक्त हैं। ये प्रविविक्त अर्थात् सोते हुए जीवात्मा के पालक हैं। यही स्वप्नावस्था के अन्तर्यामी भगवान् द्वितीयपाद प्रणव में उकार के देवता तैजस् हिरण्यगर्भ भगवान् शत्रुघ्न के रूप में जाने जाते हैं ।। श्री ।।

संगति– अब सुषुप्ति के अन्तर्यामी का निरूपण करते हैं—

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्द-भुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ।।५।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– जिस अवस्था में सोता हुआ पुरुष न कोई कामना करता है और न ही कोई स्वप्न देखता है। उसमें स्थित विभु अन्तर्यामी भगवान् प्रत्येक शरीर में रहते हुए भी एक हैं। उनमें घनीभूत प्रज्ञा हैं। वे आनन्दस्वरूप हैं। इसीलिए वे आनन्दभुक् अर्थात् आनन्द के पालक हैं भोक्ता नहीं। इसीलिए मानसकार ने भगवान् को आनन्दसिन्धु कहा है ।। श्री ।।

जो आनन्द सिन्धु सुखरासी। सीकर ते त्रैलोक सुपासी ।।

—(मानस- १-१९७-५)

सिन्धु जल का भोग नहीं करता पालन करता है। चित्त ही उनका प्राप्ति स्थान है। उन्हें प्राज्ञ कहते हैं। वही भगवान् के तृतीयपाद प्रणव में मकार के स्वामी स्वप्न के अन्तर्यामी भरत हैं ।। श्री ।।

संगति– अब प्राज्ञ की विशेषताओं का वर्णन करते हैं ।। श्री ।।

एष सर्वेश्वर एव सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः।
सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ।।६।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– यही सर्वेश्वर हैं, यही सर्वज्ञ हैं, यही अन्तर्यामी हैं, यही सम्पूर्ण प्राणियों के जन्मदाता हैं तथा यही सम्पूर्ण जीवों के उत्पत्ति और प्रलय के स्थान हैं। वास्तव में यह व्याख्या हमने प्राचीनों के अनुरोध से प्रस्तुत किया है, जबकि इस व्याख्या से मैं सहमत नहीं हूँ। क्योंकि यह मन्त्र पूर्णरूप से तुरीयचैतन्य भगवान् राम में ही घटता है। यदि इसे प्राज्ञ का विशेषण माना जायेगा तब दोष यह आयेगा कि— एक ही विभु में प्राज्ञत्व

और सर्वज्ञत्व इन दोनों धर्मों का कैसे सन्निवेश किया जायेगा। इसके लिए अद्वैतवादियों ने निरर्थक समष्टिवाद कल्पना कर के बालू की दीवाल खड़ी की। अतः ये पाँचों विशेषण तुरीय-चैतन्य में ही घटाने चाहिए। सौभाग्य से वाल्मीकि रामायण में सर्वेश्वरत्वादि पाँचों वैशिष्ट्य भगवान् राम में ही संगत किये गये हैं। अब उन उदाहरणों को क्रम से देखिये—

१. सर्वेश्वर— स्वामी लोकस्य राघवः

—(वा०रा०- ६-११६-११)

२. सर्वज्ञः— न भवन्तं मतिश्रेष्ठं समर्थं वदतां वरम्।
आतिशाययितुं शक्तो वृहस्पतिरपि ब्रुवन्।।

—(वा०रा०- ६-१७-५१)

३. अन्तर्यामी— अन्तर्यामी त्वं धारयसि भूतानि पृथ्वी सर्वपर्वतान्।।

—(वा०रा०- ६-११७-२३)

४-५. सर्वस्य योनिः प्रभवाप्ययौ—

सर्वाल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान्सचराचरान्।
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः।।

—(वा०रा०- ५-५१-३९)

वाल्मीकि ने भगवान् राम का सर्वेश्वरत्व बहुत स्पष्ट कहा है—

सर्वलोकेश्वरस्येह कृत्वा विप्रियमीदृशम्।
रामस्य राजसिंहस्य दुर्लभं तव जीवितम्।।

—(वारा०- ५-५१-३९)

इतना ही नहीं, गोस्वामी तुलसीदास ने भगवान् राम को तुरीय चैतन्य कहा है। 'तुरीयमेव केवलम्' (मानस- ३-४-९) और उन्हीं तुरीय चैतन्य श्रीराम को बार-बार अन्तर्यामी कहा है।। श्री।।

अन्तर्यामी राम सकुच सप्रेम कृपायतन।

—(मा०- २-२०१)

अन्तर्यामी राम सिय तुम्ह सरवग्य सुजान।
जौ फुर कहहुँ त नाथ निज कीजिय वचन प्रमान।।

—(मानस- २-२५६)

यदि आप प्राज्ञ को अनतर्यामी कहेंगे तो गोस्वामी जी के वचन का विरोध होगा। यदि कहो कि विरोध होने दीजिए। क्योंकि तुलसीदास तो भाषा के कवि हैं। तो यह कहना उचित नहीं हैं। क्योंकि भगवान् वेदव्यास के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास महर्षि वाल्मीकि के अवतार हैं। जैसे कि भविष्योत्तर पुराण के प्रतिसर्गपर्व के चौथे अध्याय में उमा-महेश्वर-संव्वाद के क्रम में वेदव्यास जी कहलाते हैं—

वाल्मीकिस्तुलसीदासः कलौ देवि भविष्यति।
रामचन्द्रकथां साध्वि भाषाबद्धां करिष्यति।।

यदि तुम पुराणों को भी नहीं मानते तो फिर ऐसे नास्तिक से चर्चा करना ही निरर्थक है।। श्री।।

वस्तुतः यह मन्त्र तुरीय चैतन्य की ही व्याख्या है। क्योंकि इसके पहले एक-एक मन्त्र में ही दोनों विभुओं की व्याख्या की गयी फिर प्राज्ञ की व्याख्या दो मन्त्रों में क्यों की जायेगी। तब अथर्वश्रुति का विरोध होगा। क्योंकि वाल्मीकि जी ने सर्वेश्वर भगवान् राम को माना है और वही तुरीय चैतन्य है। जबकि अथर्वश्रुति ने श्रीभरत लाल जी को प्राज्ञ माना है— 'प्राज्ञात्मकस्तु भरतो' (रा०उ०उ०-२) इसलिए इस श्रुति का अब इस प्रकार अर्थ होगा। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था से परे ये तुरीय चैतन्य भगवान् सर्वेश्वर हैं, यही सर्वज्ञ हैं, यही श्रीसीतारामात्मक ब्रह्म अन्तर्यामी हैं, यही समस्त संसार के अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं और यही प्राणियों के उत्पत्ति और प्रलय के स्थान हैं।। श्री।।

संगति— अब श्रुति भगवती तुरीयचैतन्य का स्वरूपतः लक्षण कहती हुई उसकी विज्ञेयता सिद्ध करती हैं। यहाँ यह ध्यान रहे कि— इसके पहले कहे हुए तीनों अवस्थाओं के विभु भी भगवान् ही हैं। किन्तु तुरीय और उनमें इतना ही अन्तर है कि— वे तीनों एक-एक अवस्था से परिच्छिन्न होने के कारण शरीर में रहने से कार्य ब्रह्म हैं और तुरीय चैतन्य सभी अवस्थाओं से अतीत शरीरनिरपेक्ष तथा अपने चित्तस्वरूप से सभी अवस्थाओं में समानरूप से अनुगत एवं व्याप्त होने के कारण ब्रह्म हैं। इसलिए तुरीय चैतन्य को श्रुति ने विज्ञेय कहा। इन्हीं चिदचिद्विशिष्ट तीनों कार्यब्रह्म तथा तुरीयचैतन्य रूप कारणब्रह्म का परस्पर अद्वैत होने के कारण हमारा श्रौत

विशिष्टाद्वैत सिद्ध होता है। चूँकि तुरीयचैतन्य भगवान् राम हैं। अत: मानसकार ने बड़े ही आदर से कहा— **'जगद्गुरुं च शाश्वतं तुरीयमेव केवलम्।।'** और सुन्दरकाण्ड में तुलसीदास ने प्रभु राम को कारण मनुष्य कहा है—

बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक।।

—(मा०सु०- ५०/४)

इसी तथ्य को श्रुति यहाँ स्पष्ट कर रही है—

नान्त:प्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयत:प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेय: ।।७।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– यह तुरीय चैतन्य अन्त:प्रज्ञ तैजस् नहीं है और यह बहिष्प्रज्ञ जाग्रत् का देवता वैश्वानर भी नहीं है। यह उभयत: प्रज्ञ जाग्रत् स्वप्न का समुच्चय भी नहीं है। यह प्रज्ञानघन सुषुप्ति का विभु प्राज्ञ भी नहीं हैं। यह प्रज्ञ प्रज्ञावान् मुक्त आत्मा भी नहीं है। यह अप्रज्ञ बद्ध जीवात्मा भी नहीं हैं। यह प्राकृत नेत्रों से देखा नहीं जा सकता। यह अव्यवहार्य नहीं है।। श्री।।

हम जैसे सामान्य जीवों द्वारा इसे व्यवहार में नहीं लाया जा सकता। यह इतना सूक्ष्म है कि इसे किसी इन्द्रिय से ग्रहण नहीं किया जा सकता। हमारी बुद्धि से परे होने के कारण यह अलक्षण है। इसका स्वरूपतटस्थ लक्षणों में एक भी लक्षण नहीं किया जा सकता। चित्त से बहुत दूर होने के कारण यह अचिन्य है। इसके नाम रूप अनेक होने के कारण इसका व्यपदेश नहीं किया जा सकता। एक आत्मा है अर्थात् 'परमात्म एक ही है' यह विश्वास है कि इसके अनुभव का सार है। यह संसार के सभी प्रपंचों को समाप्त कर देता है। यह स्वयं निरुपद्रव तथा शान्त है। जगत् में अपनी रचना के अतिरिक्त कोई दूसरी सत्ता नहीं है। इसी अद्वैत से यह युक्त है इसलिए इसे अद्वैत भी कहते हैं। इसी सकलकल्याणगुणगणनिलय तुरीयचैतन्य को चतुर्थपाद शिव, तुरीय कारण ब्रह्म भी कहते हैं। यही आत्मा है और यही हमारे द्वारा विज्ञेय है।। श्री।।

संगति– अब प्रणव की मात्राओं और पादों का अभेद सिद्ध करते हैं।। श्री।।

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा।
मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥८॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– वही परमात्मा ओंकार के अर्धमात्रा में रहते हैं। अकार, उकार, मकार ये तीनों ओंकार के पादाक्षर हैं और यही ओंकार की ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत मात्रायें हैं॥ श्री॥

संगति– अब जाग्रत् अवस्था वाले ब्रह्म का निरूपण करते हैं॥ श्री॥

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्त्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥९॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– इसी प्रकार जाग्रत् अवस्था के विभु वैश्वानर-ओंकार के अकार अक्षर और ह्रस्व मात्रा में विराजते हैं। यह आदि अक्षर और आप्ति मात्रा है। इस प्रकार जो जानता है वह सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है और वह सभी का आदि अर्थात् मुख्य बन जाता है। यह वैश्वानर उपासना श्री रामायण की लक्ष्मण उपासना है॥ श्री॥

संगति– अब स्वप्नस्थाने द्वितीयपाद का निरूपण किया जाता है॥ श्री॥

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद ॥१०॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– स्वप्नावस्था के विभु तैजस् प्रणव के द्वितीय पाद उकार मे स्थित होने से उकारमय हैं और ये ही प्रणव की द्वितीय अर्थात् दीर्घमात्रा में विराजते हैं। चूँकि यह प्रणव के उकार अक्षर और दीर्घमात्रा इन दोनों में विराजते हैं इसलिए इनका उत्कर्ष है। जो इनके उत्कर्ष को जान कर प्रणव के उकार और दीर्घ मात्रा में तैजस् की उपासना करता है वह अपनी ज्ञान परम्परा को उत्कृष्ट बनाता है तथा वह लोक और परलोक दोनों में समान रहता है। उसके कुल में कोई ब्रह्मज्ञान से शून्य नहीं होता। यही तैजस् उपासना रामायण में श्री शत्रुघ्न लाल की उपासना है॥ श्री॥

जाके सुमिरन ते रिपुनासा। नाम शत्रुघ्न वेद प्रकासा॥

—(मा०– १/१९७/८)

संगति– अब सुषुप्ति अवस्था के विभु का निरूपण करते हैं ।। श्री

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ।।११।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– सुषुप्त अवस्था के विभुप्राज्ञ ही प्रणव के तृतीयपाद मकार तथा प्लुत मात्रा हैं। अर्थात् मकार और प्लुतमात्रा में प्राज्ञ ही निवास करते हैं। मकार को मिति और प्लुत को अपीति कहा जाता है। जो इस प्रकार प्रणव के मकार और प्लुतमात्रा में प्राज्ञ की उपासना करता है वह सबको मान का विषय बना लेता है और सबका अपीति बन कर सभी प्रातव्य वस्तुओं को निश्चयपूर्वक प्राप्त कर लेता है ।। श्री ।।

संगति– अब चतुर्थपाद का निर्देश करते हैं ।। श्री ।।

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद य एवं वेद ।।१२।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– इस प्रकार चतुर्थपाद अमात्र है। अर्थात् उसकी कोई मात्रा नहीं है। वह अर्ध मात्रात्मक है। वही चतुर्थपाद है। उसी में तुरीय चैतन्य परमात्मा का निवास है। इसलिए वह व्यवहार के योग्य नहीं है। वह सभी प्रपंचों का उपशमक है। वह शिवतत्व है। उसके समान प्रतियोगी ज्ञान का अभाव होने से वह अद्वैत है। इस प्रकार ओंकार में क्रम से चारों पादों में वैश्वानर, तैजस्, प्राज्ञ, तुरीय नामक आकारों से परमात्मा श्रीराम ही निवास करते हैं। जो इस प्रकार प्रणव में अखण्ड परमात्मा श्रीराम की उपासना करता है और उन्हें अपने सेव्य के रूप में जानता है वह शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि इन अनात्म तत्वों से विलक्षण शुद्ध भगवत् किंकरभूत प्रत्यगात्मतत्व से अभिन्न होकर बुद्धि पर्यन्त सभी अनादि तत्वों को इसी संसार में छोड़ कर परमात्मा श्रीराम में ही प्रवेश कर लेता है, और सामीप्य मुक्ति पाकर प्रभु के श्रीचरणकमल की नित्य सेवा का सौभाग्य प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार ओंकार के चारों चरणों में परब्रह्म परमात्मा श्रीराम की ही चार रूपों में उपासना कही

गयी है। गम्भीर विचार करने पर भी हमें कहीं समष्टि-व्यष्टि-प्रपंच वाली प्रत्यगात्म उपासना का सूत्र नहीं मिला। वस्तुतः यही प्रभु के चारों रूपों की उपासना क्रमशः लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत, राम की उपासना है। माण्डूक्योपनिषद् पर मेरे द्वारा रचित श्रीराघवकृपाभाष्य साधकों को माण्डूक प्लुति से बचा कर श्रीसीताराम का कृपापात्र बना दे इसी मंगलकामना के साथ

माण्डूक्योपनिषदि पर रचि सुमति अविकार्य।
श्रीराघवकृपाभाष्य शुभ रामभद्र आचार्य॥

इति श्रीमाण्डूक्योपनिषद् पर श्रीचित्रकूट तुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरुरामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्यप्रणीत श्रीराघवकृपाभाष्य सम्पन्न हुआ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु ॥

●

।। श्रीः ।।

ध्रुवमिदं, विश्वस्य विश्वेऽपि विचरकाश्चामनन्ति यज्जीवेनात्यन्तिकं सुखं नोपलब्धुं शक्यते केवलैः सांसारिकैर्भोगैः। तत्कृते तु तैः जगन्नियन्तुः परमात्मनः शरणमेवाङ्गीकरणीयम्। अनादिकालादेव सर्गेऽस्मिन् ब्रह्मजिज्ञासासमाधानपराः विचाराः प्रचलन्ति। विषयेऽस्मिन् सर्वे दार्शनिकाः सहमता यद्वेदैरेवास्य गूढरहस्यात्मकस्य परब्रह्मणः प्रतिपादनं सम्भवम्।

परब्रह्मणो निश्वासभूता अनन्तज्ञानराशिस्वरूपाः वेदाः ज्ञानकर्मोपासनाख्येषुत्रिषु काण्डेषु विस्कृताः सन्ति। एषां ज्ञानकाण्डाख्य उपनिषद्भागे वेदान्तापरनामधेया ब्रह्मविद्या वैशद्येन विर्वोचता व्याख्याता चास्ति। आसामुपनिषदां सम्यग्ज्ञानेनैव ब्रह्मज्ञानं तेन च भवदुःखनिवृत्तिरित्युपनिषदां सर्वातिशायिमहत्वं राद्धान्तयन्ति मनीषिणः। आसु प्रश्नोत्तरात्मकातिरमणीयसुमम्यसरलशैल्या जीवात्मपरमात्मनोर्जगतश्च विस्तृतं व्याख्यानं कृतमस्ति। अनेकैर्महर्षिभिरनेकैः प्रकारैरुद्भावितानां ब्रह्मविषयकप्रश्नानां समाधानानि ब्रह्मवेतृणां याज्ञवल्क्यादिर्महर्षीणां मुखेभ्य उपस्थापयन्त्युपनिषदः। भगवता वेदव्यासेन ब्रह्मसूत्रेषु भगवता श्रीकृष्णेन च श्रीगीतायामासामेव सारतत्वं प्रतिपादितम्।

भारतीयदर्शनानामाधारभूता इमे त्रयो ग्रन्थाः विभिन्नसम्प्रदायप्रवर्तकैराचरयैर्व्यख्याताः। एष्वद्वैतवादिन आद्यशङ्कराचार्याः प्रमुखा, अन्ये च द्वैतशुद्धाद्वैतद्वैताद्वैतशिवाद्वैतदिवादिनो विद्वांसः स्वस्वमतानुसारमुपनिषदः व्याख्यापयांबभूवुः।

अथ साम्प्रतिकभारतीयदार्शनिकमूर्धन्यैर्वेदवेदाङ्गपारङ्गतैर्धर्मध्वजधारिधौरेयैः श्रीरामानन्दाचार्यैः श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्यमहाराजैर्विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तमनुसृत्य कृतामिदमुपनिषदां **''श्रीराघवकृपाभाष्यम्''** सर्वत्रैवाभिनवविचारैर्व्युत्पत्तिभिश्चालङ्कृतं विभाति। भाष्येऽस्मिन्नाचार्यचरणैः शब्दव्युत्पत्तिचातुरीचमत्कारेण सर्वोपनिषदां प्रतिपाद्यः भगवान् श्रीराम एवेति सिद्धान्तितम्। मध्ये मध्ये गोस्वामिश्रीतुलसीदासग्रन्थेभ्यः ससंस्कृतरूपान्तरमुदाहृता अंशविशेषासुवर्णे सुरभिमातन्वन्ति। श्रीराघवपदपद्ममधुकराः भक्ता अत्रामन्दानन्दमाप्नुयुरिति भगवन्तं श्रीराघवं निवेदयति।

डॉ. शिवरामशर्मा
वाराणसी